इकाई 17 कृषि सम्बन्ध : मुगलकालीन

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम मुगल कालीन भारत के कृषि संबंधों की चर्चा करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भू-उत्पादन में हिस्सा पाने वाले विभिन्न वर्गों का उल्लेख कर सकेंगे;
- **जमींदार** और उनके अधिकारों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- विभिन्न प्रकार की श्रेणियों और ग्रामीण समुदाय का अवलोकन कर सकेंगे;
- अधिशेष उत्पादन में हिस्सा पाने वाले अन्य बिचौलियों का वर्णन कर सकेंगे; और
- विभिन्न कृषक वर्गों के आपसी सम्बन्धों को रेखांकित कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

कृषि अधिशेष का बड़ा हिस्सा भू-राजस्व के रूप में वसूल लिया जाता था। जैसा कि इकाई 16 में चर्चा की जा चुकी है सैद्धांतिक रूप में सम्राट भू-राजस्व का एकमात्र दावेदार माना जाता था। हालांकि व्यवहार में राज्य और इसके प्रतिनिधियों के अलावा अनेक प्रकार के बिचौलिए कई तरीकों से बड़ी राशि पर अधिकार जमा लेते थे।

इस इकाई में हम भूमि और उसके उत्पादन पर विभिन्न वर्गों के अधिकारों पर विचार-विमर्श करेंगे। इन वर्गों के अंतर्संबंधों की भी चर्चा की जाएगी।

17.2 राजस्व अधिन्यासी और अनुदान प्राप्तकर्त्ता

किसानों से भू-राजस्व वसूलने के लिए राज्य ने दो तरीके अपनाए। पहली व्यवस्था के तहत

जागीरदारों को राजस्व इकट्ठा करने के लिए कुछ इलाके दे दिए गए। इस राजस्व को **जागीरदार** अपनी तनख्वाह के रूप में और सेना के रखरखाव के लिए उपयोग करते थे। दूसरी तरफ **खालिसा** भूमि का राजस्व शाही पदाधिकारी वसूल किया करते थे। **जागीरदारों** का अक्सर स्थानांन्तरण होता रहता था और आवंटित इलाके पर उनका कोई स्थाई अधिकार नहीं होता था। उसका अधिकार भू-राजस्व और अन्य करों तक ही सीमित था।

अनुदान प्राप्तकर्ता

एक तरफ **जागीरदारों** को उनके नगद वेतन के रूप में राजस्व अनुदान प्रदान किए जाते थे दूसरी तरफ एक और समुदाय था जिसे जीवन यापन के लिए राजस्व अनुदान दिया जाता था। इस प्रकार का अनुदान राज्य के संरक्षण में रहने वाले धार्मिक व्यक्तियों, विद्वानों और साधन विहीनों को दिया जाता था।

इन अनुदानों को **सुयुरग़ाल** या **मदद-ए माश** (जीवन यापन के लिए सहायता) के नाम से जाना जाता था। इन अनुदानों की देखभाल **सद्र-उस सुदूर** के नेतृत्व में एक विभाग करता था। नगद सहायता को **वज़ीफा** कहा जाता था। **मदद-ए माश** अनुदान कुछ खास श्रेणी के लोगों के लिए बनाया गया था। इस अनुदान को पाने वाले व्यक्ति का भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता था। वह केवल नियत दर पर कुल उत्पादन में से राजस्व ले सकता था। अकबर ने इस प्रकार के अनुदान पर 100 **बीघा** प्रति व्यक्ति की सीमा लगा रखी थी। अकबर ने कृषि को बढ़ावा देने के लिए आधी खेती योग्य भूमि और आधी अनजुती या **बंजर** जमीन देने की प्रथा चलाई थी।

अनुदान प्राप्तकर्त्ता को पूरे जीवन के लिए अनुदान मिलता था और उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी अनुदान के नवीनीकरण के लिए आवेदन कर सकते थे। आमतौर पर उत्तराधिकारियों को अनुदान का एक अंश प्रदान किया जाता था। जहांगीर ने अकबर द्वारा दिए गये सभी अनुदानों का अनुमोदन करके नवीनीकरण कर दिया परन्तु शाहजहां ने सभी अनुदानों का परीक्षण आरम्भ किया। उसने उत्तराधिकारियों को मिलने वाले अनुदान की सीमा 30 कर दी और औरंगजेब ने उसे घटाकर 20 **बीघा** कर दिया। अपने शासनकाल के तीसवें वर्ष में उसने सारे अनुदानों को अनुवांशिक कर दिया। इन अनुदानों को उसने एक प्रकार का ऋण (**अरियत**) माना न कि सम्पत्ति। उसके शासनकाल के उत्तरार्द्ध में और उसकी मृत्यु के बाद अनुदान प्राप्तकर्ता जमीन को खरीदने, बेचने या हस्तांतरित करने लगे। इस कारण धीरे-धीरे इन अनुदानों का अधिकार क्षेत्र **जमींदारी** अधिकारों के समकक्ष हो गया।

अकबर के शासनकाल में इस प्रकार के अनुदानों का राजस्व कुल जमा के 5.84 प्रतिशत से ऊपर नहीं होता था। उन अनुदानों की भौगोलिक अवस्थिति को देखने से पता चलता है कि ये अधिकांशतः ऊपरी गांगेय प्रदेशों (दिल्ली और इलाहाबाद में अधिकतम) में केन्द्रित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मौहम्मद शाह के शासन काल के आरंभिक वर्षों तक कुल राजस्व में भूमि अनुदानों का हिस्सा लगभग अपरिवर्तनीय रहा। इस भौगोलिक अवस्थिति से पता चलता है कि ये अनुदान मुख्यतः शहरी क्षेत्रों में केन्द्रित थे। हमें इससे यह भी पता चलता है कि लगभग 70 प्रतिशत सुयुरग़ाल अनुदान उन **परगनों** में केन्द्रित थे जो गैर मुसलमान **जमींदारों** के अधिकार में थे।

एक दूसरे प्रकार का अनुदान (**वक्फ**) संस्थानों आदि को दिया जाता था। धार्मिक मकबरों, समाधियों, मदरसों आदि के रख-रखाव के लिए कुछ जमीन का राजस्व स्थाई रूप से निश्चित कर दिया जाता था। इस प्रकार के अनुदान **जागीरदार** भी दे सकता था जो उस **जागीरदार** के उस इलाके में रहने तक कायम रहता था।

मदद-ए माश अनुदान की सहायता से प्रभाव-क्षेत्र कायम किया जाता था और इससे बंजर भूमि को विकसित करने में भी मदद मिलती थी। आमतौर पर इस प्रकार का अनुदान शेखों, सैयदों और अन्य विद्वानों को दिया जाता था। आपातकाल में स्थानीय अशांति को

दबाने के लिए वे सरकारी सेना में शामिल हो जाते थे। ये अनुदान राजस्व का बहुत बड़ा हिस्सा नहीं थे। अनुदान प्राप्तकर्त्ता उस इलाके के और अन्य इलाकों के **जमींदारी** अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न लगातार करते रहते थे। अतः इनमें से कुछ **जमींदार** बन गये। 18वीं शताब्दी के आरंभ तक ये अनुदान सभी प्रकार के लेन-देन में जमींदारी भूमि के रूप में जाने लगे।

बोध प्रश्न 1

1) **जागीर** प्रदान करने से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

2) भूमि अनुदान क्या थे? ये अनुदान किन्हें प्राप्त होते थे?

....

....

....

....

....

17.3 जमींदार

वस्तुतः मुगल साम्राज्य के प्रत्येक हिस्से में **जमींदार** उपस्थित थे और मुगल कालीन भारत की कृषि संरचना में उन्हें सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। **जमींदार** शब्द फ़ारसी के दो शब्दों—**जमीन** (भूमि) और **दार** (ग्रहणकर्त्ता) से मिलकर बना है। मुगल काल से पहले **जमींदार** शब्द का उपयोग इलाके के प्रधान के लिए किया जाता था। इस तथ्य का, कि प्रधान सर्वोच्च संप्रभुसत्ता की सर्वोच्चता को स्वीकार करता था, इससे उसके अपने क्षेत्र में उसके अधिकारों पर कोई फर्क नहीं पड़ता था। अकबर के समय से यह पद किसी भी व्यक्ति के उत्पादन से सीधे हिस्सा ग्रहण करने के अनुवांशिक दावों के लिए जाना जाता था। **जमींदार** शब्द ने कई स्थानीय शब्दों जैसे दोआब में **खोत** और **मुकद्दम**, अवध में **सत्रही** और **बिस्वी**, राजस्थान और गुजरात में **बंठ** या **वंठ** की जगह ले ली। हालांकि समकालीन उल्लेखों में **जमींदार** के पर्याय के रूप में इन शब्दों का उपयोग होता रहा है। जिन क्षेत्रों में **जमींदार** नहीं थे उन क्षेत्रों को "**रैयती**" (किसानों के अधिकार-क्षेत्र) कहा गया।

17.3.1 जमींदारों के अधिकार

जमींदारी का मतलब भूमि पर सम्पत्ति अधिकार नहीं था। यह भूमि उत्पादन पर **जमींदारों** का एक दावा था जो राज्य की भू-राजस्व की मांग के साथ-साथ चलता था। लेकिन निजी सम्पत्ति की भांति किसी भी वस्तु की तरह इसे बेचा या खरीदा जा सकता था। यह अनुवांशिक और विभाज्य था अर्थात् **जमींदार** के उत्तराधिकारी इसके वित्तीय लाभों को आपस में बांट सकते थे और इलाके के कानून के अनुसार **जमींदारी** के विशेषाधिकारों को ग्रहण कर सकते थे।

जमींदारों को ऐतिहासिक विरासत के रूप में अधिकार प्राप्त होते थे जिनका उपयोग उनके पूर्वज और वंशज किसी खास गांव के निवासियों पर पहले से करते आ रहे थे। कभी **जमींदारों** ने गांवों को बसाया होगा और उसकी जमीनों को किसान वर्ग में बांट दिया होगा। पूर्वी राजस्थान में, अपनी व्यक्तिगत जमीन पर खेती कराने के लिए **भूमिया (जमींदार)** ने **बसीदारों** (कृषकों की एक कोटि) को बसाया था। इस प्रकार शासकीय वर्गों ने **जमींदारी** अधिकारों को जन्म नहीं दिया बल्कि वे उनसे पहले से ही कायम थे। हालांकि जहां **जमींदारी** नहीं थी वहां राजा गांवों में **जमींदारी** निर्मित कर सकता था। वह किसी **जमींदार** को पदच्युत भी कर सकता था। परन्तु यह कदम वह राजद्रोह करने या राजस्व के भुगतान न किए जाने पर ही उठाया करता था।

मध्यकालीन शासकों ने **जमींदारों** के अधिकारों को वैधता प्रदान की परन्तु उन्होंने बराबर यह प्रयत्न किया कि वे सरकार के प्रतिनिधि के रूप में राजस्व वसूल करें।

जमींदारों ने जब से सरकार को राजस्व वसूल करने में मदद करने का काम शुरू कर दिया तबसे उसे इस सेवा (**खिदमत**) के लिए कुल राजस्व का एक खास प्रतिशत मिलने लगा। सरकारी आंकड़ों में इसे 10 प्रतिशत बताया गया है और इसे **नानकार** (भत्ता) कहा गया है। जब प्रशासन **जमींदारों** से नहीं बल्कि अपने प्रतिनिधियों से राजस्व वसूल करवाती थी तो उसे कुल राजस्व में से कुछ हिस्सा **जमींदार** को देना पड़ता था जिसे **मालिकाना** (सम्पतिगत अधिकार) कहते थे और **नानकार** की तरह यह भी कुल वसूली राशि का 10 प्रतिशत हिस्सा होता था। गुजरात में **जमींदार** के इस दावे को बंठ या **वंठ** कहते थे। परन्तु, उत्तर भारत के **मालिकाना** की अपेक्षा इसकी दर ऊंची थी। **मालिकाना** की तरह इसका भुगतान भी नगद होता था। दक्खन में इसे **चौथ** (एक चौथाई) कहते थे। जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह वसूले गये राजस्व का एक चौथाई हिस्सा होता था। दक्खन के **जमींदारों** का एक अन्य वित्तीय दावा **सरदेशमुखी** के नाम से जाना जाता था जो कुल राजस्व का 10 प्रतिशत होता था। मराठों ने **चौथ** और **सरदेशमुखी** जैसे करों की वसूली किसी वास्तविक **जमींदारी** अधिकार के तहत नहीं बल्कि बल प्रयोग से की। शिवाजी के शासनकाल में **चौथ** के एक चौथाई हिस्से और पूरी **सरदेशमुखी** पर शासक का अधिकार होता था जबकि **चौथ** का तीन चौथाई हिस्सा मराठा सरदारों में वितरित कर दिया जाता था।

अपने मुख्य वित्तीय दावों के अलावा ये **जमींदार** किसानों से कई प्रकार के **उपकर** और **नजराने** वसूल किया करते थे। इनमें से कुछ हैं; **वस्तर शुमारी** (पगड़ी कर), गृह कर (**खाना शुमारी**), विवाह और जन्म आदि पर कर, आदि। **जमींदार** अपने इलाके के साप्ताहिक बाजारों से भी कर वसूला करता था। कई बार अपने क्षेत्र से गुजरने वाले व्यापारियों से भी वे कर वसूला करते थे। **जमींदारों** द्वारा वसूली गयी इन राशियों का अनुमान लगाना बहुत कठिन है। ऐसा माना जा सकता है कि उनकी भू-राजस्व से प्राप्त वितीय दावे की तुलना में यह (उपकरों से प्राप्त राशि) काफी कम था। अभी तक हम सीधे प्रशासन वाले क्षेत्र के प्रारंभिक और मध्यस्थ **जमींदारों** की बात कर रहे थे। प्रत्येक शासन की यह कोशिश रहती थी कि इन **जमींदारों** को मात्र कर वसूलकर्ता बनाकर रख दिया जाये। इनके अलावा **राजा, राव, राणा** और **रावत** जैसे कुछ सरदार या **सामंत** होते थे जो अपने क्षेत्र में कमोबेश स्वायत्त हुआ करते थे और साम्राज्य प्रशासन के बिना किसी हस्तक्षेप के शासन किया करते थे (देखिए इकाई 6)। उन्हें केवल राजा को **नज़राना (पेशकश)** के रूप में निश्चित राशि देनी होती थी। वे किसानों से जितना वसूल करते थे उसका एक खास हिस्सा शासक को दे दिया करते थे और शेष राजस्व पर उनका अधिकार होता था। साम्रांज्य प्रशासन उन्हें अर्द्धस्वायत्तता का दर्जा प्रदान करता था और एक बार **पेशकश** दे देने के बाद उनके आंतरिक प्रशासन में कोई हस्तक्षेप नहीं करता था। इरफान हबीब के अनुसार, ''जमींदारों और स्वायत्त सरदारों के बीच का अन्तर केंद्रीय शक्ति से उनके संबंधों पर आधारित था जिनके द्वारा सरदारों को तो स्वायत्तता प्रदान की गई थी, किन्तु साधारण जमींदार राजा की विशेषाधिकार प्राप्त (**मालिकाना**) प्रजा के समतुल्य थे।

17.3.2 जमींदारों की सैन्य शक्ति

जमींदारों के पास अपनी पैदल और घुड़सवार सेना होती थी। सेना की सहायता से वे किसानों से राजस्व वसूला करते थे और उन्हें दबाया करते थे। लगभग सभी **जमींदारों** के पास अपने छोटे या बड़े किलाचे, गढ़ी या किले होते थे। **आइन-ए अकबरी** के अनुसार मुगल साम्राज्य में **जमींदारों** की सेना में चौवालीस लाख से ज्यादा सिपाही थे। बंगाल में उनके पास हजारों नावें थी।

17.3.3 चौधरी

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, **जमींदार** भू-राजस्व वसूल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इनमें से कुछ को राजस्व वसूल करने की दृष्टि से **चौधरी** की उपाधि दे दी जाती थी। **परगना** के एक प्रमुख **जमींदार** को **चौधरी** नियुक्त किया जाता था। आमतौर पर एक **परगना** में एक **चौधरी** होता था।

चौधरी को **परगने** के अन्य **जमींदारों** से कर वसूलना होता था। अपने परंपरागत **नानकार** के अतिरिक्त **चौधरियों** को वसूले गये इस राजस्व में से भी अलग से हिस्सा मिलता था। इसे **चौधराई** कहते थे और यह कुल वसूले गये राजस्व का ढ़ाई प्रतिशत होता था। **जमींदारों** के विपरीत **चौधरी** की नियुक्ति राज्य करता था और उसे ठीक ढंग से काम न करने पर किसी भी समय हटाया जा सकता था।

17.3.4 अन्य मध्यस्थ

प्रत्येक गांव में कई अनुवांशिक पदाधिकारी होते थे। उनमें सर्वप्रमुख गांव का मुखिया (उत्तर भारत में **मुकद्दम** और दक्खन में **पटेल**) होता था। उसके जिम्में राजस्व वसूलना और गांव में कानून व्यवस्था की देख-रेख करना होता था। अपनी सेवाओं के बदले में उसे गांव में राजस्व मुक्त भूमि प्रदान की जाती थी। हालांकि कुछ मामलों में उसे भी वसूले गये राजस्व में से नगद हिस्सा मिला करता था। इसके अलावा उसे किसानों से भी उपज में से कुछ हिस्सा लेने का अधिकार था। राजस्व वसूल करने में ग्रामीण लेखपाल (उत्तर भारत में **पटवारी** और दक्खन में **कुलकर्णी**) **मुकद्दम** की सहायता किया करता था। **पटवारी** किसानों से वसूले गये राजस्व और राज्य को दिये गये राजस्व का लेखा-जोखा (बही) तैयार करता था। उसके आंकड़ों से सरकार को किसानों के राजस्व चुकाने के सायर्थ्य का पता लगाने और गांव पर कुल भू-राजस्व निर्धारित करने में सहायता मिलती थी। **मुकद्दम** के समान उसे भी राजस्व मुक्त भूमि मिलती थी अथवा राजस्व में से नगद हिस्सा मिलता था। गांव के मुखिया की अपेक्षा उसका भत्ता काफी कम था। **मुकद्दम** और **पटवारी** का पद और उससे जुड़े विशेषाधिकार अनुवांशिक थे।

बोध प्रश्न 2

1) **जमींदारी** अधिकारों की प्रकृति पर संक्षेप में विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर तीन पंक्तियां लिखिये :

i) **चौधरी :**

....

....

....

....

....

ii) मुकद्दम :

....

....

....

....

....

17.4 कृषक वर्ग

अभी तक हमने भूमि से होने वाली उपज पर सर्वोच्च अधिकार रखने वाले वर्गों का अध्ययन किया। इस भाग में हम उत्पादन करने वाले वर्ग का अध्ययन करने जा रहे हैं।

कृषक वर्ग में किसान मुख्य रूप से सीधे खेती से जुड़ा हुआ था। हालांकि किसानों के भी कई स्तर थे परन्तु अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से सभी को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत रखा जा रहा है।

किसान ग्रामीण समाज का मुख्य वर्ग था और उससे वसूले गये राजस्व पर ही पूरा शासन और राज्य-तंत्र आधारित था। इकाई 16 पढ़ते समय हमने देखा था कि किसानों को अपनी उपज का अधिकांश हिस्सा राजस्व के रूप में दे देना होता था। ऐसा लगता है कि अधिकांश किसान मुश्किल से अपना (दरिद्रता में) जीवन यापन करते थे।

17.4.1 कृषक वर्ग के भूमि संबंधी अधिकार

किसानों के भूमि संबंधी अधिकार को लेकर इतिहासकारों के बीच लम्बी बहस चली है। हालांकि राज्य ने कभी भी भूमि पर किसानों के अधिकारों को नकारा नहीं परन्तु उन्हें कभी भी अपनी इच्छानुसार भूमि खरीदने और बेचने का अधिकार भी नहीं दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक किसान खेती करता था तब तक भूमि पर उसका अधिकार होता था। किसान खेती करता रहे और राजस्व देता रहे तो **जमींदारों** और राज्य को किसानों को बेदखल करने का कोई अधिकार नहीं था। ऐसा लगता है कि मुगल काल में भूमि संबंधी सम्पतिगत अधिकार का स्वरूप कुछ स्थिर और निश्चित नहीं हुआ था। हां, इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इस दौरान भूमि के उत्पादन पर तरह-तरह के दावे प्रस्तुत किए गये।

कई समकालीन आलेखों में शोषण से पीड़ित होकर या अन्य समस्याओं के कारण किसानों के गांव छोड़कर भाग जाने का उल्लेख मिलता है। ऐसी अनेक घटनाओं का पता चलता है जिसमें किसान व्यक्तिगत रूप में या सामूहिक रूप में कहीं जाकर बस गये हों। मुगल कालीन भारत में किसानों का एक जगह से दूसरी जगह जाना एक स्थापित तथ्य है। इस प्रकार का स्थान परिवर्तन और पलायन शोषण या बाढ़ अथवा अकाल जैसे प्राकृतिक प्रकोपो के कारण हुआ करता था।

17.4.2 कृषक वर्ग का स्तरीकरण

कृषक वर्ग कोई समरूप समुदाय नहीं है। इनका स्तरीकरण सम्पति और सामाजिक हैसियत में भिन्नता के कारण था। बड़े किसानों के पास ज्यादा संसाधन होते थे, उनके पास ज्यादा

खेत थे और वे अपने खेतों में मजदूरों की भी सहायता लेते थे। वे गांव के मुखिया (**मुकद्दम या पटेल**) के रूप में अन्य किसानों के उत्पादन से हिस्सा ग्रहण कर सकते थे। यह विभाजन इतना स्पष्ट था और सरकारी आंकड़ों और लेखों में इनका अलग से उल्लेख किया जाता था। धनी किसानों को उत्तर भारत में **खुदकाश्त** (स्वयं खेती करने वाले कृषक), राजस्थान में **घरूहल** और महाराष्ट्र में **मिरासदार** कहते थे। गरीब किसानों को उत्तर भारत में **रेजा रियाया** (छोटे किसान), राजस्थान में **पालती** और महाराष्ट्र में **कुनबी** कहते थे।

इसका एक प्रमुख कारण चारों तरफ फैली नगदी व्यवस्था में ढूंढा जा सकता है। भारत के अधिकांश हिस्सों में भू-राजस्व का भुगतान नगद के रूप में होता था, अतः किसानों और खेतिहरों को बाध्य होकर अपनी फसल बाजार जाकर व्यापारियों को बेचनी पड़ती थी या फसल कटाई के समय महाजन से उधार लेना पड़ता था। ऐसी स्थिति में नगदी फसल उगाने वाले किसान फायदे में रहते थे क्योंकि वे ऊंचे दामों में अपनी फसल बेचते थे। परंतु संसाधनों के अभाव में जो किसान खाद्य फसलें उगाते थे उनका भाव बाजार में अपेक्षाकृत कम होता था और उन्हें कम पैसा मिलता था। सभी किसान नगदी फसल की खेती नहीं कर सकते थे क्योंकि इसमें लागत ज्यादा आती थी; अच्छी किस्म का बीज, बेहतर उर्वरक, सिंचाई या नहर सुविधा और उर्वर भूमि की जरूरत पड़ती थी। भू-राजस्व की नगद मांग के कारण सम्पन्न किसान और निर्धन किसान के बीच की खाई बढ़ती चली गयी। सम्पन्न किसान अपने संसाधनों का उपयोग कर नगदी फसल उगा सकता था जबकि निर्धन किसानों के लिए खाद्यान्न फसल उगाना भी महंगा और कष्टकर कार्य होता था। भू-राजस्व मांग की दमनात्मक प्रवृत्ति के कारण भी किसान वर्ग में भेद पैदा हो गये। अमीर और गरीब दोनों प्रकार के किसानों से एक ही प्रकार की राजस्व मांग की जाती थी परंतु गरीब किसानों को अमीरों की अपेक्षा ज्यादा बोझ झेलना पड़ता था। ग्रामीण संगठन या आम बोलचाल की भाषा में ग्रामीण समुदाय ने **खुदकाश्त** किसानों के राजस्व की दर कम करके और इस घाटे को **रेजा रियाया** द्वारा पूरा करवाकर इस विभाजन को और गहरा बना दिया।

किसान वर्ग के विभाजन का आधार केवल आर्थिक ही नहीं था। गांव के स्थाई निवासी (उत्तर भारत में **खुदकाश्त**, महाराष्ट्र में **मिरासदार** और दक्खन में **थालवैक** या **थालकर**) और अस्थाई निवासियों (उत्तर भारत में **पाई काश्त** महाराष्ट्र में **उपरी**) में भी भेद था। जातिगत बंधन और गोत्रीय संबंध (**भाई चारा**) भी विभाजन के आधार थे।

भारत के गांवों में किसानों से भी नीचे एक सामाजिक दृष्टि से भी निम्न श्रमिक वर्ग था, जिन्हें दास समझा जाता था। कृषक जाति के अनुपात में उनकी संख्या का अनुमान लगाना लगभग असंभव है। परन्तु संभवतः भारत की ग्रामीण जनसंख्या में उनकी संख्या काफी थी। समकालीन साहित्य में उन्हें **चमार**, **बलाहार**, **थोरी** और **धानुक**, आदि कहा गया है। वे किसानों और **जमींदारों** के लिए सस्ती दरों पर मजदूरी करते थे। बुआई और कटाई के समय ये किसानों और **जमींदारों** के खेतों में काम करते थे इसलिए उन्हें दबाकर रखना उन दोनों (किसान और **जमींदार**) के हित में था। सस्ती दर पर मजदूर उपलब्ध होने के कारण कृषि लागत में कमी आई और "अधिशेष" उत्पादन में वृद्धि हो गई। इससे शासक और ज्यादा राजस्व वसूलने के लिए प्रवृत्त हुआ। इन निम्न जाति के मजदूरों का शोषण राज्य, **जमींदार** और किसान एक साथ मिलकर करते थे।

17.4.3 ग्रामीण समुदाय

आमतौर पर एक गांव के किसान अधिकांशतः एक ही जाति के होते थे। ऐतिहासिक रूप से इन गांवों को एक परिवार या कुल द्वारा बसाया जाता था। प्रभावशाली जाति के किसानों के अलावा एक गांव में निम्न जाति के मजदूर भी रहा करते थे। समकालीन आलेखों को देखने से लगता है कि कई मामलों में ये गांव समुदाय के रूप में कार्य करते थे। इससे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि यहां किसी प्रकार की सामुदायिक भूमि की व्यवस्था थी। खेतों का मालिक निश्चित रूप से कोई कृषक होता था। राजस्व निर्धारण और वसूली की सुविधा को ध्यान में रखते हुए राजस्व पदाधिकारी गांव को एक इकाई मान लिया करते थे। **पटवारी**

द्वारा ग्रामीण पदाधिकारी के रूप में कार्य करना इसका प्रमाण है। यह माना जाता है कि **पटवारी** को व्यक्तिगत किसानों के उत्पादन और राजस्व अदायगी का हिसाब-किताब रखना पड़ता था। लेकिन गांव एक इकाई के रूप में राज्य को भुगतान करता था। व्यक्तिगत किसानों के राजस्व को एक सामूहिक निधि-कोष में डाल दिया जाता था जो **पटवारी** के जिम्मे होता था। इस कोष से कुछ पदाधिकारियों के भू-राजस्व, शुल्क और अन्य राशियों और गांव के सामूहिक खर्च का भुगतान किया जाता था। यहां तक कि महाजन से लिया गया ऋण भी इसी कोष से चुकाया जाता था।

गांव के प्रभावशाली लोगों को मिलाकर एक ग्रामीण पंचायत बनती थी। ग्राम पंचायत भूमि से सम्बद्ध विवादों को निपटाता था, बंजर भूमि की देखभाल, आदि का कार्य करता था। अपराधियों को गिरफ्तार करना, चोरी हुई वस्तु का मूल्य चुकाना या उन्हें खोज निकाला पंचायत की राज्य के प्रति जिम्मेदारी थी। ये पंचायतें राज्य से ऊपर नहीं थीं। राज्य इसे ग्रामीण समाज में भूमिका निभाने से तब तक नहीं रोकता था जब तक कि राज्य के आधारभूत सिद्धांतों पर ही कुठाराघात न किया जा रहा हो।

गांव में कुछ सामाजिक समुदाय ऐसे भी होते थे जो सीधे कृषि उत्पादन से सम्बद्ध नहीं थे परन्तु कृषि गतिविधियों में उनकी कुछ न कुछ भूमिका होती थी। महाजन राज्य और किसानों के बीच मध्यस्थ का कार्य करता था और उसका ग्रामीण समाज और अर्थव्यवस्था पर काफी नियंत्रण होता था। वे किसानों को व्यक्तिगत तौर पर ऋण प्रदान करते थे और गांव को सामूहिक तौर पर बीज और औजार के लिए कर्जे देते थे। वे राजस्व अदा करने और सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भी कृषकों को ऋण दिया करते थे।

गांवों में कारीगर भी रहा करते थे। उन्हें अपनी सेवाओं के बदले कटाई के समय फसल दी जाती थी। दक्खन और महाराष्ट्र में यह व्यवस्था अच्छे ढंग से व्यवस्थित थी। इन्हें **बलूतेदार** कहा जाता था। हम इनके बारे में इकाई 19 में अध्ययन करेंगे।

ग्रामीण समुदाय, **पंचायत** या **बलूतेदार** की व्यवस्था मुगल साम्राज्य के सभी गांवों में एक समान नहीं थी। विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की संरचनाएं थी। सभी गांवों में किसी न किसी रूप में सामुदायिक संरचना विद्यमान थी। परन्तु, उनका अपने सदस्यों पर नियंत्रण का स्तर और प्रभाव अलग-अलग था।

17.5 कृषक वर्गों के अन्तर्संबंध

इस इकाई के आरंभिक भाग में हमने कई कृषि वर्गों का उल्लेख किया है। हमने देखा कि **जागीरदार**, धार्मिक अनुदान प्राप्तकर्ता, **जमींदार** और ग्रामीण स्तर पर अनेक बिचौलिए उत्पादन के अधिशेष से अपना हिस्सा लिया करते थे। हमने उत्पादक वर्ग अथवा किसान वर्ग का भी अध्ययन किया। इस भाग में हम इन वर्गों के संबंधों का अध्ययन करेंगे।

ज़मींदारों और **ज़ागीरदारों** का भरण-पोषण किसानों द्वारा उपजाए गये अनाज के अधिशेष से होता था अतः किसानों के शोषण के मामले में ये एक दूसरे की सहायता किया करते थे। **ज़मींदार** गांव में स्थाई रूप से रहता था। अतः वह किसानों पर इतना ज्यादा अत्याचार और शोषण नहीं करना चाहता था कि किसान अपना खेत छोड़ कर भाग जाए जिसके फलस्वरूप कृषि कार्य के बंद हो जाने का भय था। इससे आने वाले वर्ष में उसी की वित्तीय आमदनी पर प्रभाव पड़ता। बर्नियर, जो 17वीं शताब्दी के मध्य में भारत आया था, उसने **ज़ागीरदारों** के दृष्टिकोण पर विशेष टिप्पणी की है। **ज़ागीरों** के जल्दी-जल्दी स्थानान्तरण के कारण **ज़ागीरदार**, राज्यपाल और राजस्व के ठेकेदार किसान की दयनीय स्थिति की बिल्कुल चिंता नहीं करते थे। वे केवल किसानों को ज्यादा से ज्यादा चूसना जानते थे। उनके शोषण से तंग आकर किसान अपने खेत छोड़कर भाग जाते थे और खेती नहीं हो पाती थी।

18वीं शताब्दी का एक लेखक जवाहर मल बेकस लिखता है कि एक दिन का **हाकिम** (**ज़ागीरदार**) एक क्षण में पांच सौ वर्षों के **जमींदार** को हटा कर उसके स्थान पर किसी भी व्यक्ति को बैठा सकता है। इरफान हबीब उसकी शक्तियों पर विस्तार से चर्चा करते हुए लिखते हैं, "**ज़ागीरदार** किसानों को एक अर्ध-दास की तरह भूमि से बांध कर रखने की ताकत रखता था और अगर वे भाग जाएं तो पुनः पकड़ कर वापस बुला सकता था।" 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में **ज़ागीरों** की अस्थिरता और अनिश्चितता के कारण **ज़ागीरदार** किसानों का दमन करने लगे। उन्हें उनके कल्याण की तनिक भी चिंता नहीं थी। इरफान हबीब के अनुसार "हालांकि निःसन्देह मुगल प्रशासन ने **ज़ागीरदारों** की अवैध मांग को नियंत्रित और कम करने की कोशिश की, फिर भी यह निश्चियपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि **ज़मींदारों** द्वारा निजी तौर पर थोड़े समय के लिए बढ़ाए गए राजस्व के दबाव को इसके द्वारा कम किया जा सका था। इन दबाबों के कारण न केवल खेती के प्रसार में बाधा पड़ी बल्कि इससे मुगल शासकीय वर्ग दो प्रमुख कृषि वर्गों, **जमींदारों** और कृषक वर्ग से गहरे रूप में उलझ गया।

कृषक वर्ग अंदर से विभाजित था और खेतिहर मजदूरों से उनके अंतर्विरोधों के कारण यह वर्ग सशक्त और संगठित वर्ग के रूप में न उठ सका और इस वर्ग की क्षमता में कमजोरियां पैदा हो गई। इस विभाजित और विखंडित वर्ग में मध्यकालीन निरंकुश राजतंत्र से लड़ने की क्षमता नहीं थी। इसके बावजूद इन्होंने दो कारणों से विद्रोह किया पहला जब राजस्व मांग किसानों के अधिशेष उत्पादन से ज्यादा हो गयी और इस प्रकार उनके अस्तित्व पर ही संकट आ गया। इन विद्रोहों में किसानों ने राजस्व घटाने की मांग के अलावा और कोई मांग नहीं की। किसानों ने **ज़मींदारों** के अनुयायियों के रूप में भी विद्रोह किया जो राज्य या **ज़ागीरदार** के खिलाफ विद्रोह कर रहे थे (ये विद्रोह केवल उत्पादन में हिस्सा लेने के लिए हुए थे)। किसान इस आशा में उनका साथ दे रहे थे कि विद्रोह के बाद उनकी स्थिति सुधरेगी या फिर अपनी मालिक की सेवा मात्र के उद्देश्य से कर रहे होते थे। इस प्रकार के किसान विद्रोह मूलतः **ज़मींदारी** विद्रोह ही थे : **ज़मींदार** उनका नेतृत्व करते थे और किसान **ज़मींदारों** के उद्देश्य पूर्ति में सहायक का काम करते थे। इन **ज़मींदारों** के नेतृत्व में हुए किसान आन्दोलनों की चर्चा हम अलग इकाइ में करेंगे।

बोध प्रश्न 3

1) किसानों की विभिन्न श्रेणियों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) ग्रामीण समुदाय किस प्रकार कार्य करता था।

....

....

....

....

....

3) **जागीरदारों** और **जमींदारों** के हितों में क्या टकराव थे?

....

....

....

....

....

....

....

....

17.6 सारांश

इस इकाई में हमने निम्नलिखित बातों का अध्ययन किया:

- **ज़ागीरदार** राज्य के लिए कृषि अधिशेष का बड़ा हिस्सा वसूल करता था;
- राजस्व प्राप्तकर्ताओं को राज्य की तरफ से राजस्व-मुक्त भूमि अनुदान में दी जाती थी;
- **जमींदार** जमीन का मालिक हुआ करता था लेकिन उपज पर उसका अनुवांशिक अधिकार होता था। इन अधिकारों को बेचा जा सकता था;
- जब **ज़मींदार** राज्य के लिए राजस्व इकट्ठा करता था तब उसे **नानकार** मिलता था। लेकिन जब राज्य सीधे अपने कर्मचारियों द्वारा राजस्व इकट्ठा करता था तो **जमींदार** को **मालिकाना** हिस्सा दिया करता था। **जमींदार** अन्य उपकार भी वसूल किया करते थे;
- **जमींदार** सेना रखते थे;
- **जमींदार** हमेशा जाति और गोत्र में बंटे रहे और भारत के शासकीय वर्ग के रूप में नहीं उभर सके;
- गांव का मुखिया और अन्य पदाधिकारी भी कृषि अधिशेष से अपना हिस्सा ग्रहण करते थे;
- किसान को अपनी उपज का अधिकांश हिस्सा राज्य, **जमींदार** और अन्य बिचौलियों को दे देना पड़ता था;
- कृषक वर्ग एक समजाति समुदाय नहीं था। ये भूमि और आय के आधार पर विभाजित थे। जाति और गोत्र के आधार पर भी वे विभाजित थे;
- भूमिहीन किसान या निम्न जाति से संबद्ध समझे जाने वाले मजदूर ग्रामीण समाज के सबसे सताए हुए लोग थे; और
- **जागीरदारों** और जमींदारों के बीच हितों का टकराव जबरदस्त था। दोनों के बीच के संघर्ष में किसान आमतौर पर **जमींदारों** का पक्ष लेते थे और ऐसे झगड़ों में उनका ही सबसे ज्यादा नुकसान होता था।

17.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 17.2
2) देखिए भाग 17.2

बोध प्रश्न 2

1) **जमींदारों** का भूमि के उत्पादन पर अधिकार था। विस्तार के लिए उपभाग 17.3.1 देखिए।

2) देखिए उपभाग 17.3.3 और 17.3.4

बोध प्रश्न 3

1) खेती, संसाधनों और भूमि संबंधी अधिकारों की प्रकृति के आधार पर किसानों को कई श्रेणियां में विभाजित किया जा सकता है। देखिए उपभाग 17.4.2

2) गांव के लोगों की प्रतिनिधि सभा ग्रामीण समुदाय के रूप में कार्य करती थी। देखिए उपभाग 17.4.2

3) **जमींदारों** का अपने इलाके के साथ स्थाई हित जुड़ा हुआ था जबकि **जागीरदारों** का स्थानान्तरण होता रहता था। **जागीरदारों** का उद्देश्य केवल किसानों का शोषण करना होता था जबकि **जमींदारों** को भय होता था कि किसान खेत छोड़कर भाग जाएंगे और उनकी आमदनी कम हो जाएगी। देखिए भाग 17.5